शब्द सूर-कर्मन का सूर से 'सरबत दा भला'

आदित्य नाथ तिवारी

समाज के विकास क्रम में अवधारणाएँ एवं परिभाषाएँ बनती बदलती रहती हैं। इन्हीं अवधारणाओं से विचार का मूर्त रूप निर्मित होता है। यह विचार धीरे-धीरे सामाजिक संस्कार बन जाते हैं। संस्कृति निर्माण एवं व्यक्ति निर्माण में इन सामाजिक संस्कारों की अहम् भूमिका होती है। जब यही संस्कार स्वीकृत रूप से पीढ़ियों में स्थानांतरित होने लगते हैं तो परंपरा का विकसित रूप दिखाई देता है। प्रत्येक पीढ़ी का कर्त्तव्य है की सामाजिक संस्कारों में आने वाली परंपरा और रूढ़ि की पहचान करें और अपनी चेतना, विवेक से उसे अलग करें। परंपरा में जब निरंतरता आती है तभी आधुनिकता का प्रवाह बनता है। परंपरा निरंतरता आधुनिकता। परन्तु जब यही परंपरा समयानुसार देश, काल, स्थान के अनुसार परिवर्तित नहीं होती तो वह जड़ हो जाती है जिसे रूढ़ि कहते हैं। जब परंपरा में एकाधिकार या वर्चस्व के कारण स्थिरता आ जाती है तब रूढ़ि की भावना जनमानस की मानसिकता को कुंद कर देती है। परंपरा स्थिरता (वर्चस्व) रूढ़ि।

परन्तु जहाँ रूढ़ि को ही परंपरा मान लिया जाए तो फिर कर्मकांड, अंधविश्वास, अंधश्रद्धा, आडम्बर आदि का स्वरुप फैलने लगता है। भारतवर्ष में 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यही रूढ़िगत अवधारणाएँ समाज ढो रहा था। कोई ज्ञान से, कोई कर्मकांड से, सभी अलग-अलग यंत्र-तंत्र से समाज को डरा रहे थे और अंधकार की ओर ले जा रहे थे। यह समय भारत में सांस्कृतिक संक्रमण का था। जहाँ एक ओर आम जनमानस बाह्य आक्रमण से शोषण का शिकारथा तो दूसरी ओर आतंरिक शोषण से। गुरु नानक जी मध्यकालीन विकृतियों एवं अमानवीय आचरण को उजागर करते हुए कहतें हैं-"सत्य का अंत हो गया है. झूठ का चारों ओर विस्तार है। लोभ राजा है और पाप उसका मंत्री, झूठ सेनापति है और काम नायक है। प्रजा अंधी और ज्ञान विहीन है। वह मुर्दों की तरह कर भर रही है। शासक गण कसाई बन गए हैं। बेरहमी की छुरी उनके हाथ में हैं धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। चारों ओर झूठ की काली अमावस छाई हुई है उसमें सच्चाई का चन्द्रमा कहीं नहीं दिखाई देता है।"

सचि कालु कूडू वरतिआ कलख बेताल,

लबु पापु दुइ राजा महता कुडू होआ सिकदारु,

कामु नेषु सदि पूछिए बहि बहि करे बीचारु,

अंधी रयति गियान निहुणी भाहि भरे मुरदारु।

(आसा दी वार म. । पृ. 468-469)

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया,

कुद् अमावस संचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।

ऐसे समाज में जब सारी अवधारणाएँ एवं परिभाषाएँ अपना अर्थ खो चुकी हों। समाज में जहाँ चारों तरफ भय, हिंसा और भयावह हानि की स्थितियाँ हों वहाँ गुरु जी की बाणी किस प्रकार अपनी भूमिका निभाती हैं; यह अन्वेषण का प्रश्न है। इस अन्वेषण में अनेक प्रश्न हमारे सामने आते हैं-नानक जी ने किस प्रकार तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया। यह व्यावहारिक समाधान क्या है? नानक जी की बाणी में योगी कौन है? इसमें निहित मुक्ति की क्या संकल्पना है? इसमें कौन धर्म का सार्थक अनुयायी है? यह सभी प्रश्न गुरु जी की बाणी के प्रति जिज्ञासा तो उत्पन्न करते ही हैं साथ ही इस संकल्पना की ओर भी ध्यान आकृष्ट करते हैं।

नानक बाणी में जीवन का आधार 'शब्द सूर-कर्मन का सूर' को माना गया है। अर्थात् जीवन में वचन का पालन करने वाले वीर एवं कर्त्तव्य का पालन करने वाले वीर ही सामाजिक आदर्श हो सकते हैं। इस आदर्श को प्राप्त करने वाला ही योगी हो सकता है। बाणी में तीन तरह के योगियों की चर्चा की गयी है ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, राजयोगी।'

1. किरत कमाई

नानक बाणी में उद्यम करने वाले को कर्मयोगी कहा गया है। गुरु नानक जी स्वयं जीवन में व्यावसायिक कार्यों में संलग्न रहते थे साथ ही उद्यम को बढ़ावा देते थे। इसके माध्यम से गुरु जी ने पहली बार योगी की परिभाषा ही बदल दी। योगी वह नहीं है जो जीवन की सारी समस्याओं से दूर एकांत को प्राप्त करता है और भोजन के लिए गृहस्थों पर आश्रित रहता है साथ ही गृहस्थ धर्म की आलोचना भी करता है। बल्कि योगी वह है जो उद्यम कर अर्जन करता है। अपनी सभी सामाजिक एवं पारिवारिक आवश्यक्ताओं को पूरा करता है इसके साथ ही, प्रभु स्मरण करता है वही सच्चा योगी है

तत्कालीन समाज में योगियों पर गुरु जी कहते हैं"

जोगी बसि रहहु दुबिधा दुखु भागै

धरि धरि मांगत लाज न लागैआदि ग्रन्थ (पृ. 903)

अर्थात् हे योगी! तुम ईश्वर से एकाकार होने का दावा करते हो और तुम्हें कोई चिंता व कष्ट नहीं है तो क्या तुम्हें भिक्षा के लिए दर दर की ठोकरें खाते लाज नहीं आती)। गुरु जी को अपनी तीसरी भारत यात्रा के दौरान योगियों से संवाद करने का अवसर मिला। तिब्बत की यात्रा के दौरान योगियों से संवाद का वर्णन मिलता है गृहस्थ जीवन के महत्त्व को गुरु जी ने इस प्रकार बताया है-

पुत्र कलत्र विचे गति पाई, गृहु बनु समसरि सहजि सुभाइ. बाणी में जीवन मुक्ति का स्वरूप एक ही है की जीवन को सम्पूर्णता में जीना ही कर्मयोगी का लक्षण है।

2. नाम स्मरण (ज्ञान योगी)

भारतीय संस्कृति की परंपरा में शब्द ब्रह्म की अवधारणा विद्यमान रही है। शब्द से ही सृष्टि का कण-कण सम्बद्ध है। इस परंपरा का व्यापक प्रसार नानक बाणी का आधार है। बाणी में मूर्तिपूजा अर्थात् धर्म के बाह्य स्वरुप से निकल कर, नाम स्मरण अर्थात् मनुष्य की आंतरिक चेतना को उद्बुद्ध किया गया है। स्वयं को जाने बिना जगत सत्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए नानक बाणी में आत्मज्ञान एवं आत्मचिंतन को नाम स्मरण के माध्यम से प्राप्त करने का मार्ग सुझाया गया है ज्ञान के चार स्वरुप निम्न हैं-

पहला, नाम स्मरण, सुख सहजे जपि रिदै मुरारी, नामि रते सदा तपु होइ.

जो सदा अपने हृदय में नाम प्रेम की ज्योति जलाए रहते हैं-वे पूर्ण शांति और आनंद का उपभोग करते हैं। नाम जपना वास्तव में आतंरिक सुदृढ़ता एवं आत्मविश्वास से भरे होने का प्रतीक है। स्वयं को जाने बिना जगत से जुड़ना श्रेयस्कर नहीं है।

दूसरा चरण अंतर प्रकाश का है।

'सब कुछ घर में बाहर नाहीं, जो बाहर ढूंढे सो भरम भुलाई' डॉ. सीताराम बाहरी कहते हैं" गुरु नानक ने सहज योग को सामान्य, स्वाभाविक और व्यावहारिक जीवन स्वीकार किया है, जिससे मानसिक संतुलन और सामाजिक समता प्राप्त होती है।'

तीसरा चरण' स्थित प्रज्ञ' रूप है जो गुरुमुख को प्राप्त होता है और चौथे चरण में जीते जी ही मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। वास्तव में यह संकल्पना जीवन को साधारण से असाधारण की ओर ले जाने का मार्ग है। कोई भी व्यक्ति इस मार्ग पर चलकर जीवन मुक्त हो सकता है उसके लिए किसी आडम्बर और विशेष क्रियाकलाप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि डॉ. गुरुमीत सिंह अपने लेख वैदिक धर्म और गुरु नानक बाणी में उक्त पंक्ति को रेखांकित करते हैं-

"एकम एककारु निराला, अमरु अजोनी जाति न जाला" सभी धर्म एक से हैं। एक परमात्मा ही देवताओं का देवता है तथा उसी से सभी आत्माएँ पैदा होती हैं। उस की कोई जाति नहीं है। यह संकल्पना उस अवधारणा को निराधार बताती है जो कहता है कि निम्न भौतिक क्रियाकलापों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। नाम स्मरण को नानक बाणी में तीर्थ और दशहरा पर्व की संज्ञा दी गयी है।

3. राज योग (सेवा धर्म)

मानव एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक होने के साथ ही उस पर समाज का दायित्व भी है जो वह भिन्न-भिन्न माध्यमों से पूरी करता है। नानक बाणी में समाज की इकाई होने के कारण व्यक्ति को सेवा धर्म करने हेतु प्रेरित किया गया है।

घालि खाइ किछु हथहु देइ, नानक राहु पछाणहि सेई,

अर्थात् मनुष्य को चाहिए की वह स्वयं जीविकोपार्जन करे तथा

उस में से कुछ दूसरों को दान करे तभी वह वास्तविक मार्ग को पहचान सकता है। सिख धर्म में दसवंद की परंपरा इसी सेवा भाव का परिणाम है।' पहले बाँटो फिर खाओ' की परंपरा ने लंगर सेवा की श्रृंखला आरम्भ कर दी। जहाँ तत्कालीन धर्मों में संसार को त्यागने का भाव दीखता है वही नानक बाणी में सेवा के माध्यम से राज योग को प्राप्त करने का योग प्रस्तुत होता है। धर्म का मार्ग सहज है और जीतना सहज है उतना ही भावपूर्ण। धर्म जीने की पद्धति है जिसको स्वयं गुरु जी जीते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी पीढ़ियाँ उस मार्ग पर चल देती हैं। यह योग है. साधना है, जीवन है सबका घुला-मिला रूप यह राज योग है-

सेवा सुरति सबदि विचारि, जपु तपु संजमु हउमै मारि।

जीवन मुकतु जा सबद सुनाए, सची रहत सचा सुख पाए।।

गुरु नानक देव जी की बाणी सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार तो करती ही है साथ ही समाज की संकल्पना को बेहतर बनाने हेतु समानांतर एक मार्ग भी प्रशस्त करती है। यह मार्ग जिसका आधार शब्द सूर-कर्मन का सूर का है। इस मार्ग में सन्यास के बजाय गृहस्थ जीवन का योग है, आडम्बर के बजाय नाम स्मरण है, और हिंसा के बजाय सेवा है। डॉ. सीताराम बाहरी कहतें हैं" नानक ने जनता के सामने यह सिद्धांत रखा की पवित्र जीवन स्वयं सत्य से भी अधिक मूलयवान है। वस्तुतः वह सामाजिक जीवन से सभी प्रकार की तन्द्रा, खिन्नता तथा निराशा को निकल फेंकना चाहते थे और जनता को कथनी और करनी-दोनों में सत्यपूर्ण एवं क्रियाशील बनाना चाहते थे" इसी दृढ़ शक्ति से गुरु जी ने नगर बसाये, जीवन पर्यन्त यात्राएँ की और सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों को पूरी तरह निभाया। यही कारण है उनकी संकल्पना- ज्ञानयोगी, कर्मयोगी एवं राजयोगी पीढ़ियों द्वारा अनुसरित हुआ। इन तीनो के पूर्ण योग में ही जीते जी मुक्ति है अर्थात्" नानक नाम चढ़ती कला तेरे भाणे सरबत दा भला।""

गुरु जी की बाणी मानव जीवन की सार्थक इकाई बनने हेतु प्रेरित करती है। एक ऐसा समाज जहाँ उद्यमशील लोग, नाम जप, ज्ञान, तप एवं गृहस्थी से समृद्ध जीवन को उसकी सम्पूर्णता में जियेंगे जहाँ लोगों का आत्मबल आत्मविश्वास से भरा होगा वहाँ अंधविश्वास, पाखण्ड एवं अज्ञानता का वास नहीं होगा। जहाँ लोग इतने सशक्त होंगे कि कोई आक्रांता नजर उठा कर देखने का साहस न कर सकेगा। उनकी बाणी को पीढ़ियों ने जिया है। अब यह बाणी जनमानस की चेतना का अंग बन गयी है। सिर्फ प्रान्त ही

नहीं देश-विदेश में यह संस्कार विविध माध्यमों में भ्रमण कर रहे हैं। यह नानक बाणी की कीर्ति का ही विस्तार है। डॉ. इकबाल कहते हैं- "फिर उठी आखिर सदा तौहीद की पंजाब से,

हिन्द को एक मर्द कामिल ने जगाया ख्वाब से"

आधार ग्रन्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी

संदर्भ :

1. लेख-डॉ जयभगवान गोयल, गुरुओं का मानवतावाद और आधुनिक सन्दर्भ में उसकी सार्थकता, सिक्ख चिंतन का आधुनिक संदर्भ, पब्लिकेशन

2. ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला (पृ. 16-17) प्रो. प्यारा सिंह पदम् सिख इतिहास,

3. स. हा शोभा कौर, भारतीय समाज और सिख गुरु, शंकर पब्लिकेशन, दिल्ली, 2016 (69)

4. लेख-समता और मुक्ति के अग्रदूत गुरु नानक डॉ सीताराम बाहरी (7-62)